वैदिक साहित्य में पर्यावरण- विमर्श

डॉ. ममता

भीमराव अम्बेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मार

पर्यावरण संरक्षण के लिए इन दिनों वैश्विक स्तर पर भरपूर प्रयास किए जा रहे हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से पर्यावरण के प्रांत विंता के स्वर सुनने लगे थे लेकिन औपचारिक तौर पर पहले पहल सन् 1972 में स्टाकहोम में पर्यावरण सुरक्षा को लेकर अंतरराष्ट्रीय शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया। तब से लेकर अब तक आस्ट्रिया, फिनलैंड, विएना, कनाडा. ब्राजील, अमेरिका, जापान, केन्या, दिक्षण अफ्रीका, फ्रांस और इटली आदि कई देशों में पर्यावरण के संरक्षण को लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिखर सम्मेलनों के आयोजन होते रहे हैं। इन सम्मेलनों में जल प्रदूषण, जैव विविधता का क्षरण, कार्बन उत्सर्जन, वन्य जीवों के विलुप्त होने, वायु प्रदूषण, ओजोन परत के क्षरण, वनों के अतिक्रमण तथा वृक्षों की अंधाधुंध कटाई आदि जैसी समस्याओं पर चिंता प्रकट करने और उनके समाधान तलाशने के निरंतर प्रयत्न किए गए। जलवायु-सुधार करने की दृष्टि से सन् 1992 में अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण संधि UNFCCC (यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कन्वेन्शन ऑन क्लाइमेट चेंज) पर 154 देशों ने हस्ताक्षर किए लेकिन पर्यावरण को लेकर तमाम कार्यक्रमों , सम्मेलनों, सेमिनारों एवं संधियों का कोई सकारात्मक परिणाम अभी तक सामने नही आया। पर्यावरणीय स्थिति बद बदतर होती गई। ऐसे में प्रकृति के प्रति वैदिक वांग्मय का क्या दृष्टिकोण है ? तथा प्रदूषण जितत घातक स्थितियों से निपटने के संदर्भ में वैदिक साहित्य क्या कहता है? इस लेख के माध्यम से यह समझने की कोशिश की गई है।

बीज शब्द: पर्यावरण, भारतीय संस्कृति, वैदिक साहित्य में प्रकृति, ग्लोबल वार्मिंग

प्रस्तावना

मनुष्य और प्रकृति का अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। श्रीमद्भागवतगीता में प्रकृति के आठ अंग बताते हुए इसे ·अष्ट्रधा प्रकृति[,] कहा गया है। पृथ्वी, जल, वाय, अग्नि और आकाश के साथ-साथ मन, बुद्धि और अहंकार को भी प्रकृति का हिस्सा माना है। संसार में प्रकृति का इससे गहन चिंतन और क्या हो सकता है, जहाँ बाह्य घटकों के साथ-साथ मनुष्य के आंतरिक घटकों को भी प्रकृति का अंग माना गया हो। वस्तुतः बाहरी प्रकृति (मन,) बुद्धि और अहं) को भी प्रभावित करती है और मनुष्य आंतरिक प्रकृति के प्रभाववश जो कृत्य करता है, उनसे बाह्य प्रकृति प्रभवित हुए बिना नहीं रहती। वैदिक संस्कृति में प्रकृति को देव रूप में पूजा गया है। प्राकृतिक शक्तियों में देवी स्वरूप अवधारणा समाज को उसकी रक्षा करने, उससे प्रेम करने तथा उससे अनराग रखने के लिए प्रेरित करती है। अथर्ववेद में पर्यावरण के प्रति जागरूक करते हुए कहा है कि-

भ्यदस्य कश्मैचिद भोगाय बलात कश्मिद्ध प्रक्रितांते। तत क्रिस्तेन म्रियन्ते वत्सोश्च धानुको वुकः।।/¹

अर्थात् जो मात्र उपभोग एवं अतिलिप्सा के कारण प्रकृति का कर्तन एवं दोहन करते हैं उनकी संताने और पशु-पक्षी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश की पर्यावरणीय उपयोगिता का निदर्शन है। बृहदारण्यक उपनिषद् के पाँचवें अध्याय में प्रकृति और मनुष्य के बीच परस्पर सामंजस्य और समरतापूर्ण संबंधों पर बल देते हुए कहा गया है कि हम प्रकृति से उतना ही ग्रहण करे जितना हमें आवश्यक हों तथा प्रकृति की पूर्णता को क्षति न पहुँचे। इस तरह प्रकृति का मर्यादित उपभोग करे, उसका दोहन न करें- यही यह मंत्र शिक्षा देता है। अथर्ववेद में जल शद्धि विषयक कई मंत्र है। पृथ्वी के महत्व को निरूपित करने वाले ·पृथ्वी सुक्त[,] को विश्वभर के पर्यावरणविदों ने सराहा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में प्रकृति को परमात्मा, माता, पिता, मित्र तथ सहचरी आदि के रूप में देखा माना गया है। ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों में व्यक्तित्व आरोपित कर न सिर्फ उन्हें देवत्व के पद पर सुशोभित किया बल्कि उनकी स्तुति भी की है। देवता का अर्थ है- जो कुछ देता है और सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, वन, नदियाँ और पर्वत आदि प्राकृतिक उपादानों से अधिक हम किससे प्राप्त करते हैं? इन प्राकृतिक शक्तियों के अभाव में क्षण भर के लिए भी जीवन की कल्पना असंभव है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति की चैतन्य रूप में परिकल्पना करते हुए इनका स्तुति गान

सच तो यह है कि वैदिक साहित्य से अपरिचित/अनिभज्ञ कोई व्यक्ति पहले पहल जब वेदों की ऋचाओं को पढ़ता और उसके अर्थ को समझता है तो आश्चर्यचिकत हो जाता है। ऋषियों ने सूर्य को सृष्टि का कर्त्ता माना है। वैदिक ऋचाओं में सूर्य देव की उपासना में भावोद्गार अभिव्यक्त किए गए हैं। छान्दोग्य में सूर्य को 'आदित्यों ब्रह्मेती' अर्थात् सूर्य ब्रह्म रूप है, कहा गया है। प्रश्नोपनिषद में उषाकाल की सूर्य की किरणों को 'विश्वस्ययोनिम्' कहकर इसे अमृतवर्षी माना है। सूर्य को ज्ञान, प्रकाश और उर्जा का प्रदाता मानकर इसका स्तुति गान किया गया है। सूर्य की भांति ही वैदिक साहित्य में चंद्रमा की अर्चना करते हुए उससे प्राणियों पर कृपा दृष्टि बनाए रखने की प्रार्थना की गई है। चंद्रमा औषधियों के स्वामी है। पर्यावरण की रक्षा में चंद्रमा की महत्ता से ऋषिगण अपिरचित नहीं थे। अमृतत्व से पिरपूर्ण शीतल किरणें बिखेरने वाले चंद्रमा के लिए वैदिक साहित्य में सुधांशु, सुधाकर, शीतांशु, सुधाधर तथा सोम आदि नामों का प्रयोग किया गया है। चंद्रमा को तिमिर नाशक तथा हिम वर्षा का कारक कहा गया है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 91वें सूक्त में सोम देवता की स्तुति दृष्टव्य है-

त्विममा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः। त्वमा ततन्थोर्व अन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥²

हे सोम! आपने सभी औषधियाँ, वृष्टि, जल एवं समस्त गायें बनाई है। आपने इस व्यापक अन्तरिक्ष को प्रकाशित कर उसका अन्धकार नष्ट कर दिया।

वैदिक संस्कृति में सूर्य और चंद्रमा के अलावा अग्नि, वायु, पृथ्वी, वरुण, आकाश, पर्वत, नदी, वन, वनस्पति और पृथ्वी आदि की भी श्रद्धा भाव से स्तुति की गई है। वैदिक ऋषि इस सत्य से परिचित थे कि पंचतत्वों से ही मानव शरीर की निर्मिति हुई है।

¹इमानि पंचमहाभूतानि पृथिवी, वायुः आकाशः आपज्योतिषी³

विश्व की अन्य संस्कृति में शायद ही प्रकृति के इन पंच तत्वों (पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि) का इतना गुणगान किया गया हो।

प्राकृतिक उपादानों की स्तुति करते समय वैदिक ऋषियों में विस्मय का भाव झलकता है। विविध प्राकृतिक उपादानों की देवता रूप में की गई स्तुतियों में रूप, गुण के साथ-साथ मानवीकरण भी दृष्टव्य है। पृथ्वी को माता के रूप में देखते हुए ऋषि कहते हैं- v

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ' अथर्ववेद के 'भूमि सूक्त' में ऋषि कहते हैं- देवता जिस भूमि की रक्षा, उपासना करते हैं वह मातृभूमि हमें मधुसम्पन्न करे। 'भूमि सूक्त' के ही एक अन्य मंत्र में यह प्रार्थना की गई है कि यज्ञ भूमि में देवताओं के लिए अलंकृत हव्य प्रदान करें। उसी भूमि में मरणशील मनुष्य स्वधा एवं अन्न से जीवन धारण करते हैं। वह भूमि हमें वृद्धावस्था तक प्राणप्रद वायु प्रदान करे। पृथ्वी की गोद हमारे लिए सब रोगों से रहित निरोग हो। 5

पृथ्वी की भांति जल की भी ऋषियों ने आदर भाव से स्तुति की है। वैदिक ऋचाओं में जल को 'अमृत' की संज्ञा से विभूषित करते हुए इसे 'पाप नाशक', 'महौषधि' तथा 'जीवनदायिनी' कहा गया है-

आप इद् वाउ भेषजीरापो अमीवचातनीः (जल ही औषधि और जल ही रोगनाशक है।) 'आपः सर्वस्य भेषजीः' (जल सब रोगों की एक मात्र औषधि है।) अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजम् (जल के भीतर अमृत है, औषधि है।)

ऋग्वेद में वरुण देवता की नानाविच तरीके से प्रार्थना की गई है। ऋषि जल प्रदाता के रूप में वरुण देवता की उपासना करते हैं तो इसके कोप से भयभीत भी रहते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद में जल को सृजन का हेतु स्वीकार करते हुए इसकी शुद्धता और संरक्षण पर बल दिया है। शतपथ ब्राह्मण जल की महिमा का बखान करते हुए अपो वै प्राणः कहकर जल को ही प्राण तत्व बताया गया है। वैदिक साहित्य में पर्जन्य अर्थात् बादलों को भी प्रकृति का महत्त्वपूर्ण घटक माना गया है। ऋग्वेद के पाँचवें मंडल के 83वें सूक्त की कई ऋचाओं में बादल को प्रदूषण का नाश कर्ता तथा कृषि और वनस्पतियों का मित्र माना है।

'मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु' ^१ (मानसून वायु द्वारा चलित मेघ पृथिवी पर खूब बरसे)

मेघों को जल का अभिन्न अंग मानते हुए यजुर्वेद के तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है- 'चत्वारि वा अपां रूपाणि, मेघो विद्युत्स्त्रियतुर्वृष्टि' ¹⁰ अर्थात् जलों के चार रूप है- बादल, बिजली, गर्जन और वर्षा। पर्यावरण की शुद्धता के लिए वैदिक ऋषि-मुनियों ने वायु की शुद्धता पर भी बल दिया है। वेदों में इसे प्राणवायु कहा गया है। ऋग्वेद में वायु की स्तुति करते हुए ऋषि कहते हैं-

्नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि तन्मामवतु, 11

अर्थात् वायु को नमस्कार है, आप प्रत्यक्ष ब्रह्म है, मैं आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। आप हमारी रक्षा करे। ऋग्वेद का यह मंत्र यजुर्वेद (36.9), अथर्ववेद (19.9.6) तथा तैत्तिरीय उपनिषद् (1) में यथावत आया है।

वायु के गुणों का गान करते हुए ऋग्वेद के दसवें मंडल के 186वें सूक्त में कहा है:-

े वात आ वातु भेषजं मयोभु नो हृदे, प्रण आयुंषि तारिषत^{, 12}

अर्थात् शुद्ध वायु ऐसी अमूल्य औषधि है, जो हमारे हृदय के लिए उपयोगी और आनंददायी है। दरअसल वायु शुद्ध होने पर ही जीव-जन्तु, पशु-पक्षी तथा वनस्पतियों का जीवन सुरक्षित रहता है। वैदिक ऋषियों ने वायु की शुद्धता के लिए यज्ञ को अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। वायु की शुद्धता के लिए कस्तूरी, चंदन, जायफल, केसर, शहद, किशमिश, छुआरे, गिलोय, घृत, चावल तथा अगर आदि औषधीय गुणों से युक्त द्रव्यों की हविषा से यज्ञ का प्रावधान है। कृषि के लिए यज्ञ की महत्ता को रेखांकित करते हुए ऋग्वेद के आठवें मंडल में एक जगह कहा गया है- 'मही यज्ञस्य रप्सुदा' अर्थात् देश की यज्ञवाली धरती अत्यंत उपजाऊ होती है। यजुर्वेद में 'अयं यज्ञोः विश्वस्य भुवनस्य नाभिः' कहते हुए इसे विश्व की नाभि माना है। ऋषियों ने वायुमंडल की शुद्धता पर बल दिया। यज्ञ-विधान को वैज्ञानिकों ने वातावरण की शुद्धता के लिए लाभदायक माना है। विज्ञान मानता है कि घी, मुनक्का, किशमिश, शहद आदि को घृत के साथ अग्नि में जलाने पर जो धुंआ, उत्पन्न होता है उसमें चेचक, हैजा, टायफाइड आदि के कीटाणुओं को मारने की क्षमता तो है ही साथ ही इससे वनस्पति पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे प्रतिरोधक क्षमता का भी संवर्धन होता है।

पृथ्वी, जल, वायु की भांति आकाश की विराटता के सम्मुख वैदिक ऋषि अभिभूत होकर नतमस्तक हो गए। पंचतत्वों से बनी इस सृष्टि में प्रथम उत्पत्ति आकाश की मानी जाती है-

¹ तस्माद्वा एतस्मात् आत्मनः आकाशः सम्भूतः ¹⁵

उन्होंने अदृश्य आकाश (द्युलोक) और अंतिरक्ष (नक्षत्र युक्त आकाश) दोनों के पापमुक्त अर्थात् प्रदूषण रहित होने की कामना की है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के 35वें सूक्त के 5वें मंत्र में अंतिरक्ष के शांतिप्रद होने की प्रार्थना की गई है। ऐसे ही यजुर्वेद के 5वें मंडल के मंत्र में आकाश को हानि पहुँचाने अथवा प्रदूषित करने वाले की घोर भर्त्सना की है- 'द्यां मां लेखीरन्तिरक्षं मा हिंसी:' 16 सम्भवतः यहाँ अन्तिरक्ष को हानि पहुँचाने से तात्पर्य ध्विन एवं वायु प्रदूषण रहा होगा।

ऋग्वेदीय देवों में इन्द्र के बाद अग्नि देव की सर्वाधिक स्तुति की गई है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल का पहला सूक्त ही अग्नि देवता को समर्पित है। वेदों में अग्नि की स्तुति संबंधी 2483 मंत्र है। अकेले ऋग्वेद में अग्नि विषयक 200 सूक्त है। अग्नि को प्रकाशस्वरूप मानते हुए वैदिक ऋषि यज्ञ अनुष्ठान में इसका आह्वान करते हैं- 'अग्न ना याहि,' '' अर्थात् अग्नि रोगनाशक है, पापनाशक है। यज्ञ में वातावरणको शुद्ध, अग्नि ही करती है-

फं अग्नेय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोघस्मज्जुहराण मेनो भुइष्ठान ते नमः उक्तिं विधेम^{, 18}

अर्थात् रहे देव सबके मार्गदर्शक भगवन् आप सब ज्ञानों के ज्ञाता है। अतः हम आपकी बहुत-बहुत स्तुति करते हैं। आप हमें सुपथ पर ले चिलए। हमसे कुटिल पाप को परे रखिए।' वैदिक समाज में अग्नि देवता को आदर-सम्मान के साथ देखा जाता था। इस प्रकार वैदिक साहित्य में

पृथ्वी, आकाश, वायु, जल और अग्नि के महत्व को सराहा गया है तथा इनकी स्वच्छता एवं संरक्षण के उपायों पर विशद् चर्चा भी की गई है। यद्यपि वैदिक ऋषियों की ऋचाओं में पंचतत्वों अथवा 'पंच महाभूत' जैसे किसी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता तब भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन पंचतत्वों की स्तुति के अनेकानेक उदाहरण वैदिक साहित्य में मिलते हैं।

पंचतत्वों के अतिरिक्त वृक्षों, वनों एवं वनस्पतियों के संरक्षण पर भी विमर्श किया गया है। वनों, वृक्षों, पशु-पिक्षयों, पहाड़ों, झरनों, निदयों, पर्वतों आदि के महत्व को वैदिक ऋषियों ने एकमत से स्वीकार किया है। पृथ्वी सूक्त में वृक्षों और वनों को वृष्टि का कारक मानते हुए इन्हें अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों विकृतियों का समाधान माना है। आज जब शहरीकरण की प्रक्रिया के चलते तेजी से वृक्षों की कटाई हो रही है और तेजी से वनों की कटाई के कारण बाढ़ और सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाएँ आ रही है; तो ऐसे में इन प्राकृतिक आपदाओं से बचने के उपाय वैदिक साहित्य में मिलते हैं। ऋग्वेद में वृक्षों को न काटने का निर्देश दृष्ट्य है-

भा काकम्बीरम् उद्वहो वनस्पतिम् अशस्तीवि हि नीनशः/ ¹⁹

आधुनिक विज्ञान ने पीपल को सदैव आक्सीजन गैस देने वाला पर्यावरण का मित्र वृक्ष कहा है। भारतीय परंपरा में पीपल के वृक्ष को काटना, ब्रह्महत्या के बराबर माना गया हैं। वस्तुतः इसके मूल में पीपल के वृक्ष की वायु को शुद्ध रखने की विशेषता ही रही होगी अथर्ववेद में **ंअश्वत्यो देव सदन**' ²⁰ कहते हुए इसे देवताओं का निवास स्थान तक कह दिया। वृक्षों में देवत्व की संकल्पना के वैदिक संस्कृति में प्रचुर उदाहरण है। पीपल, वट, तुलसी, अशोक, आँवला, नीम, कदंब, कमल, पलाश आदि पेड-पौधों की महत्ता और उनकी पश्-पक्षियों एवं मानव जीवन में उपयोगिता का बखान करने वाले अनेक श्लोक है। वेदों में वृक्षों और वनस्पतियों का गुणगान करने के साथ-साथ उनकी उपेक्षा करने पर दुष्परिणाम भुगतने की चेतावनी भी है। वृक्षों और वनस्पतियों के संरक्षण की चर्चा करते समय ये ऋषि-मुनि कभी शिक्षक, कभी उपदेशक, कभी प्रकृति प्रेमी तो कभी कुशल चिकित्सक की भूमिका में दिखते हैं। ऋगवेद के औषधीय सुक्त (1.187 तथा 10.97) में वनस्पतियों के औषधीय महत्व तथा उसके संरक्षण का उल्लेख मिलता है। औषधियों के पर्यावरणीय महत्व का जीवन्त प्रमाण-शांतिपाठ हैं, जिसमें औषधियों में भी शांति की कामना की गई है। वैदिक ऋषि मानते थे कि विश्व में ऐसी कोई वनस्पति नहीं, जो औषधीय गुणों से परिपूर्ण न हो। अतः उन्हें देव रूप मानकर, वे उसके काटने पर नैतिक प्रतिबंध लगाने का आग्रह करते हैं। हजारों वर्ष पूर्व स्थापित परम्परा और नियमों का ही प्रभाव

है कि हम आज भी पीपल के वृक्ष को काटने या उखाड़ने के बारे में दस बार सोचते हैं। वृक्षों एवं वनस्पतियों को धर्म के आवरण में संरक्षित करने का प्रयास किया वही पशु-पिक्षयों को जैविक पिरिस्थितिकी का महत्वपूर्ण अंग मानते हुए उनकी रक्षा करने का आग्रह भी किया है। छोटे से छोटे पिक्षी के प्रति संवेदनशीलता देखते ही बनती है। ऋग्वेद में कौएँ जैसे अप्रिय पिक्षी के प्रति संवेदनशील ऋषि का आग्रह दृष्टव्य है- 'का काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिम्' अर्थात् काकादि पिक्षयों के भरण-पोषण करने वाले वट आदि विक्षों को मत काटिए।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में मानव जीवन और प्रकृति के अन्योन्याश्रित संबंध तथा सृष्टि संचालन में प्रकृति के दोहन से बचने का संदेश, वर्तमान संदर्भों में बहुत प्रासंगिक है वैदिक जीवन पद्धित पूरी तरह से प्रकृति में रची पची है। यहाँ प्रकृति देवता भी है, शक्ति भी; जननी भी है, जीवन भी; उपभोग भी है और अध्यात्म भी।

निष्कर्ष

21वीं शताब्दी में ग्लोबल वार्मिंग की समस्या का समाधान भी प्रकृति सापेक्ष जीवन शैली अपनाने में ही छिपा है।

जलवाय में परिवर्तन, जैव विविधताओं के हास, सुनामी, भूकम्प, भूसंखलन तथा बादल फटने जैसी प्राकृतिक आपदाएँ तथा संक्रामक बीमारियाँ- वैश्विक स्तर पर चिंता का विषय बना हुआ है। गत वर्षों में भारत ने केदारनाथ, हिमाचल, कश्मीर और उडीसा में हुई पर्यावरणीय छेडछाड के परिणामस्वरूप आई तबाही को देखा और भगता है। पिछले कई वर्षों में हम अतिवृष्टि और अनावृष्टिं को देख रहे हैं। दिल्ली जैसे महानगर ·स्मॉग[,] जैसी विषैली धुंध को झेलने को विवश है। दरअसल हमने यह मान लिया था कि इस सिष्ट में विधाता ने पेड-पौधे, पश-पक्षी, कीट-पतंगे, पर्वत-नदियाँ, समद्र और आकाश सब कछ हमारे उपभोग के लिए रचा है। इस उपभोक्तावादी दृष्टिकोण के कारण हमने पर्यावरण से छेडछाड करनी शुरू कर दी और प्रकृति को अपना अनुचर बनाने की कोशिश करने लगे लेकिन बहत जल्दी प्रकृति प्रतिक्रिया स्वरूप अपना रौद्र रूप दिखाने लगी। ऐसे में वैदिक साहित्य प्रकृति के प्रकोप से बचने और प्रकृति के संरक्षण और संवर्धन के उपाय सझाता है।

संदर्भ -ग्रंथ सूची

- अथर्ववेद (4/7)
- 2. ऋग्वेद (1/91/22)
- 3. ऐतरेयोपनिषद् (3/3)
- 4. अथर्ववेद **(**12/1/12)
- 5. **अथर्ववेद (**12/1/22 **तथा** 12/1/62)
- 6. **ऋग्वेद (**10/137/6)
- 7. **ऋग्वेद (**10/137/6)
- 8. **ऋग्वेद (**1/23/19)
- 9. **अथर्ववेद (**4/15/7)
- 10. तैत्तिरीय आरण्यक (1/24/1)
- 11. **ऋग्वेद (**1/90/9)

- 12. ऋग्वेद (10/186/1)
- 13. **ऋग्वेद (**8/72/12)
- 14. **यजुर्वेद (**23–62)
- तैत्तिरीयोपनिषद् (2/1/2)
- 16. **यजुर्वेद (**5/43)
- 17. सामवेद (1/1/1)
- 18. **ऋग्वेद (**1/189/1)
- 19. **ऋग्वेद (**6/48/17)
- 20. **अथर्ववेद (**5/4/3)
- 21. **ऋग्वेद (**6/48/17)